प्रवचन-४५, गाथा-४३, बुधवार, श्रावण शुक्ल ९, दिनांक २०-०८-१९८०

नियमसार, शुद्धभाव अधिकार अर्थात् त्रिकाली ध्रुव को यहाँ शुद्धभाव कहते हैं। यह शुद्धभाव (है)। पर्याय में जो मोक्षमार्ग उत्पन्न होता है, वह भी शुद्ध है, उसकी बात नहीं है। निश्चय से तो अपने त्रिकाली द्रव्य के अवलम्बन से जो निर्विकल्प मोक्षमार्ग उत्पन्न होता है, उसे निश्चय से तो व्यवहार कहते हैं। परमार्थवचनिका में है। निश्चय द्रव्य है, तो मोक्षमार्ग व्यवहार है। निश्चयमोक्षमार्ग, व्यवहार है। पर्याय के भेद में व्यवहारमोक्षमार्ग की अपेक्षा से निश्चयमोक्षमार्ग है, परन्तु द्रव्य की अपेक्षा से लें तो निश्चयमोक्षमार्ग, पर्याय है। आहाहा! और पर्याय, वह व्यवहार है; द्रव्य, वह निश्चय है। इस कारण यहाँ कहते हैं, ममतारहित आ गया न।

प्रशस्त-अप्रशस्त समस्त मोह, राग, द्वेष का अभाव होने से... शुभ या अशुभ सब भाव का प्रभु में **अभाव होने से आत्मा, निर्मम है।** शुभराग मेरा है, यह तो उसमें है ही नहीं परन्तु शुभराग से चैतन्य को लाभ होता है, जिसमें जो स्वभाव नहीं, उससे उसे लाभ होता है, यह है ही नहीं। वह विभाव तो अपने स्वभाव में नहीं, तो विभाव से स्वभाव में लाभ हो, यह बात सत्य नहीं। अपना त्रिकाली स्वभाव जो अपने में विद्यमान, मौजूद है, उस स्वभाव की पर्याय जो स्वभाव के अवलम्बन से प्रगट होती है, वह पर्याय मोक्ष का मार्ग है। आहाहा! बहुतों को ऐसा लगता है कि यह निश्चय यहाँ कहते हैं, व्यवहार तो (कहते नहीं)। प्रभु! व्यवहार कहना किसे? मोक्षमार्ग, निश्चय होता है, वह भी पर्याय है। पर्याय को व्यवहार कहा है। वह व्यवहार होता है, परन्तु वास्तव में वह आदरणीय नहीं है। आदरणीय / उपादेय तो त्रिकाली ज्ञायक प्रभु अनन्त गुण का रत्नाकर भण्डार प्रभु, वह एक ही सम्यग्दर्शन में उपादेय है। मोक्षमार्ग भी उपादेय नहीं, जाननेयोग्य है। ज्ञान का ज्ञेय बनाने में व्यवहार है, तो व्यवहारमोक्षमार्ग तो एकदम राग है, वह तो असद्भूतव्यवहार है। अभी मोक्षमार्ग, वह निश्चय है, वह सद्भूत / अनुपचारव्यवहार है। आहाहा! ऐसे सब भेद।

त्रिकाली भगवान ज्ञायक की अपेक्षा से, उसके अवलम्बन से उसमें से निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट हुए, वही पर्याय की अपेक्षा से व्यवहार कहने में आते हैं। आहाहा! वह सद्भूतव्यवहार है। व्यवहाररत्नत्रय है, वह असद्भूतव्यवहार है, परन्तु यहाँ निश्चय में तो द्रव्य, निश्चय और पर्याय, व्यवहार-ऐसा चलता है। पंचाध्यायीकार ने तो सभी पर्याय को व्यवहार ही कह दिया है। आहाहा! पर्याय तो है। पर्याय है तो व्यवहार है, परन्तु व्यवहार किसके आश्रय से प्रगट हुआ? वह यहाँ कहते हैं। देखो!

निश्चय से औदारिक,... आदि शरीर ही आत्मा को नहीं है। आहाहा! यह औदारिक-शरीर जो है, वह आत्मा को स्पर्श नहीं करता। आत्मा औदारिकशरीर को कभी स्पर्श नहीं करता, प्रभु! तो उसका अवलम्बन नहीं, वह आत्मा में नहीं। **वैक्रियक,...** शरीर। नारकी (को होता है), मनुष्य को लब्धि हो उसे उत्पन्न होता है और देव को (होता है)। वह वैक्रियकशरीर भी आत्मा नहीं है। वह तो जड़ की पर्याय है। आहाहा! **आहारक,..** शरीर भी जड़ की पर्याय है। आहाहा! मुनि को जो होता है, प्रश्न पूछने में आहारकशरीर उत्पन्न होता है, है तो जड़। वह आत्मा में नहीं है और **तैजस, और कार्मण...** तैजस जो यह गर्मी (कान्ति) आदि दिखती है और कार्मण १४८ प्रकृति। आहाहा! वह कार्मणशरीर, उस प्रकृति का कोठा। वह पूरा १४८ प्रकृति का कोठा है।

वह **कार्मण नामक पाँच शरीरों के समूह का अभाव होने से...** प्रभु में उनका अभाव है, भाई! उनके अवलम्बन से और उनकी क्रिया से आत्मा को कुद लाभ हो-ऐसा कभी नहीं होता। औदारिकशरीर की क्रिया हो, वैक्रियक हो, वह सब जड़ की पर्याय है। उसके अवलम्बन से आत्मा को लाभ नहीं होता क्योंकि पाँच का अभाव है। आहा! इस कारण **निःशरीर है।** आत्मा निःशरीर है। त्रिकाल आत्मा निःशरीर है। आहाहा! शरीर के अस्तित्व में शरीर है; भगवान आत्मा के अस्तित्व में शरीर की नास्ति है। आहाहा! उस आत्मा पर दृष्टि देने से, दृष्टि सम्यक् अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद के साथ सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है, प्रभु! उसे धर्म की शुरुआत कहा जाता है। बाकी वाद-विवाद में क्या है? आहाहा! नियमसार में वाद-विवाद के लिए तो इनकार किया न? '**णाणा कम्मा णाणा जीवा णाणा लब्धि-**' प्रभु! तू किसके साथ वाद करेगा क्योंकि व्यवहार की बहुत बातें कथन में आती हैं। (समयसार की) ११वीं गाथा के अर्थ में लिखा है कि व्यवहार कथन में बहुत आता है, परन्तु उसका फल संसार है। समयसार की ११वीं गाथा में जहाँ

व्यवहार को अभूतार्थ कहा, अभूतार्थ अर्थात् नहीं है, ऐसा नहीं है। है, परन्तु अन्तर में निश्चय को मुख्य करके, मुख्य को निश्चय कहकर, व्यवहार को गौण करके 'नहीं' ऐसा कहा गया है। आहाहा! पर्याय नहीं है, ऐसा नहीं है। पर्याय तो व्यवहार है ही परन्तु उसका अवलम्बन / आश्रय करनेयोग्य नहीं है; इस कारण यहाँ तो पाँचों शरीर का अभाव है। तो किसी शरीर की क्रिया से कुछ लाभ हो, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! शरीर की क्रिया से भगवान की भक्ति, पूजा, स्वाहा आदि होते हैं, वह सब क्रिया शरीर / जड़ की है। उससे आत्मा को धर्म होता है, (ऐसा नहीं है क्योंकि) वह आत्मा में है ही नहीं न; है नहीं, उससे धर्म कहाँ से हो? आहाहा! निश्चय से आत्मा नि:शरीर है।

निश्चय से परमात्मा को... परमात्मा अर्थात् यह आत्मा। आहाहा! परम+आत्मा। परम-उत्कृष्ट आत्मस्वरूप। सनातन अनादि सत्य, परमसत्य परमात्मा। **निश्चय से परमात्मा को परद्रव्य का अवलम्बन न होने से...** परद्रव्य का अवलम्बन नहीं होने से... आहाहा! भगवान और भगवान की वाणी परद्रव्य है। बहुत कठिन बात है, प्रभु! एकान्त लगे। क्या करें? मार्ग तो यह है। आहाहा! वह निरालम्बन-अवलम्बन नहीं होने से। **परद्रव्य का अवलम्बन न होने से...** प्रभु आत्मा में... आत्मा शब्द नहीं लिया, परमात्मा (शब्द) लिया है। आहाहा! परमात्मस्वरूप भगवान आत्मा, त्रिकाली परमात्मस्वरूप, उसे परद्रव्य का किंचित् भी अवलम्बन नहीं है। भगवान की मूर्ति आदि के अवलम्बन में तो शुभभाव है, वह कहीं आत्मभाव नहीं है। होता है, व्यवहारभाव होता है, परन्तु वह बन्ध का कारण है। आहाहा!

यह जो मोक्षमार्ग है, वह तो **परद्रव्य का अवलम्बन न होने से आत्मा, निरालम्ब है।** आहाहा! किसी भी चीज़ की इसे अपेक्षा नहीं है। उसका अवलम्बन नहीं है। उसका ध्येय करके—परद्रव्य का ध्येय करने से कुछ लाभ होता है, ऐसा स्वरूप में नहीं है। स्वरूप, परद्रव्य से भिन्न अत्यन्त निरालम्बन है। आहाहा! यह तो अकेली निश्चय की बात आवे, इसलिए लोगों को जरा (कठिन लगती है)। निश्चय के साथ पर्याय को व्यवहार कहते हैं न, परन्तु वह तो जाननेयोग्य है; आदरनेयोग्य तो त्रिकाली आत्मा, परद्रव्य के अभावरूप निरालम्बन वस्तु, पर की कोई अपेक्षा उसे नहीं है। आहाहा! यह निश्चय हो तो फिर मोक्षमार्ग जो प्रगट होता है, उसे पर्याय से व्यवहार-सद्भूतव्यवहार कहते हैं और

उस समय जरा मन्दता है तो राग भी आता है, तो वह असद्भूतव्यवहारनय से है, ऐसा जानना कि है। आदरनेयोग्य नहीं। आहाहा! व्यवहारनय है, तो नय का विषय है परन्तु वह विषय आदरणीय नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो टीकाकार ने आत्मा को परमात्मा शब्द कहा। **निश्चय से परमात्मा को...** आहाहा! यह परमात्मा अर्थात् वीतराग केवली नहीं; यह परमात्मा। परम आत्मा, पूर्णानन्द का स्वरूप जो सत्व सत्, पूर्ण सत्, अनादि-अनन्त सत्, यह सत् वह परमात्मस्वरूप है। उस परमात्मस्वरूप को परद्रव्य का किंचित् भी अवलम्बन नहीं है। आहाहा! इस शरीर का जाना, आना, देव-गुरु-धर्म के पास जाना, सुनना, यह सब होता तो है। वह अवलम्बन नहीं है, प्रभु! होता है, ऐसा जाननेयोग्य है। वह ज्ञान का स्वभाव स्व-परप्रकाशक है तो परप्रकाश में यह जाननेयोग्य है। आहाहा!

पर का कुछ बाहर का करना है, उसमें तो कर्ताबुद्धि होती है और कर्ताबुद्धि है तो वहाँ मिथ्यात्व है। आहाहा! 'करे कर्म सो ही करतारा, जो जाने सो जाननहारा; कर्ता सो जाने नहीं कोई।' कर्ता—राग का कर्ता, विकल्प का भी कर्ता / रचनेवाला मैं हूँ, ऐसा होवे तो वह किंचित् आत्मा को जानता नहीं। 'कर्ता सो जाने नहीं कोई, जाने सो कर्ता नहीं होई।' आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा निरालम्बन है। किसी का अवलम्बन नहीं है।

निश्चय में तो भगवान परमात्मा की वाणी और परमात्मा भी परद्रव्य है; इस कारण परद्रव्य का.. आहाहा! **अवलम्बन न होने से आत्मा, निरालम्ब है।** आहाहा! अरे! एक भी बोल बराबर बैठे... जयसेनाचार्य की टीका में लिखा है, एक भी बोल यथार्थ बैठ जाये तो सब बोल उसमें आ जाते हैं। एक भाव भी यथार्थ बैठे... ऐसा पाठ है। जयसेनाचार्य की टीका में संस्कृत में है। एक भी भाव बराबर बैठे तो उसे समस्त भाव यथार्थ भासित होते हैं परन्तु एक भी भाव का ठिकाना नहीं, उसे एक भी बात यथार्थ नहीं बैठती। आहाहा! पश्चात्...

उसमें परिग्रह नहीं है। भगवान में मिथ्यात्व नहीं है। आहाहा! प्रभु में मिथ्यात्व नहीं है। वह तो आनन्द का सागर प्रभु! श्रद्धास्वरूप ही है। सम्यग्दर्शन तो पर्याय है, परन्तु उसका कारण श्रद्धा त्रिकाली जो श्रद्धास्वरूप है, जो पारिणामिकभाव से श्रद्धास्वरूप है। आहाहा! इस कारण से उसमें मिथ्यात्व नहीं है। **वेद,...** नहीं है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद, वह अभ्यन्तर परिग्रह है। आहाहा! मिथ्यात्व भी अभ्यन्तर परिग्रह है। बाहर का परिग्रह छूटा,

वह तो छूटा हुआ ही है। उसे छोड़ना, ऐसा नहीं है परन्तु अन्दर का परिग्रह जो पकड़ रखा है, उसे छोड़ना क्योंकि वह आत्मा के स्वभाव में नहीं है। आहाहा!

वेद,... वेद की वासना आत्मा में नहीं है। प्रभु तो अवेदी त्रिकाली है। आहाहा! वेद की वासना तो आकुलता और दुःख है। आनन्दसागर में उस वेद का अभाव है। **राग,...** शुभ या अशुभराग का अभाव है। जिसका जिसमें अभाव है, प्रभु! उसका उसे लाभ होता नहीं। यह अन्तर में अनुभव से बैठना, यह अलौकिक बात है, प्रभु! आहाहा! किसका मानना? बोलना, वह तो भाषा भी जड़ की है। मैं बोलता हूँ, आहाहा! वह भी मिथ्यात्व है। आहाहा! बोलना जड़ की पर्याय है। भाषावर्गणा की भाषापर्यायरूप से परिणमन, भाषावर्गणा की भाषारूप से परिणमन, वह भाषा है। वह आत्मा में नहीं है। आहाहा! बड़ा वक्ता होना और वक्तापने का अभिमान करना.. आहाहा! आत्मा वक्ता है नहीं। राग है नहीं। मैं कहूँ, ऐसा विकल्प भी है नहीं।

प्रभु ने समाधिशतक में तो यहाँ तक लिया है कि दूसरे को समझाने में जो विकल्प उठता है, वह पागलपन है, ऐसा समाधिशतक में लिखा है। क्योंकि उस विकल्प से अपने को लाभ नहीं, तथा उस विकल्प से पर को भी लाभ नहीं। आहाहा! अरे रे! ऐसा व्यवहार, उसका अभाव (है, वह) अन्तर में बैठना कठिन है, भाई! अन्तर आत्मा चैतन्य की ज्योत, जलहल की ज्योत, स्वयं ज्योति। ज्ञान की स्वयं ज्योति और सुख का धाम, आनन्द का धाम-क्षेत्र यह है। अतीन्द्रिय आनन्द का क्षेत्र है, उसमें राग की गन्ध नहीं। कोई भी शुभराग तीर्थंकरगोत्र बँधे, उस राग का भी आत्मा में अभाव है। आहाहा! है?

द्वेष,... द्वेष का अभाव। कोई चीज़ न रुचे, ठीक न लगे और द्वेष होता है, वह वस्तु में नहीं है, प्रभु में वह नहीं है। प्रभु तो ज्ञातादृष्टा ज्ञान, दर्शन, आनन्द से भरपूर है। आहाहा! कोई चीज़ रुचिकर लगे, असुहावनी लगे, ऐसा वस्तु का स्वभाव नहीं है। वह तो द्वेष का अंश है। वह आत्मा में नहीं है।

हास्य,... आहाहा! हास्य भी आत्मा में नहीं है। निश्चय से तो प्रभु! हास्य, वह पाप है। आहाहा! जैसे यह राग और द्वेष पाप है। (वैसे हास्य) वह पाप है। प्रभु तो ज्ञातादृष्टा है, उसमें हास्य का अभाव है। आहाहा! उदास, पूरी दुनिया से उदास प्रभु है। चैतन्य सत्ता में उसका आसन है। आहाहा! उदासीनोऽहम्। आहाहा! कहा न वह तब?

(संवत्) १९६४ के वर्ष, नाटक देखने गये तो ये सुना था। अठारह वर्ष की उम्र में, बहत्तर वर्ष पहले। अभी ९० वर्ष हुए हैं। आहाहा! उस समय ये कहते थे कि प्रभु! आहाहा! तू निरालम्बी है और शुद्ध है। आहाहा! और तुझमें कोई विकल्प नहीं है, तू तो उदासीन है, यह कहनेवाले को कुछ खबर नहीं होती। वह तो नौकरी, नाटक की नौकरी (थी)। आहाहा! परन्तु उस समय भी कहा, तुम क्या बोलते हो? मुझे ख्याल न आवे तो तुम्हारी पुस्तक हो तो लाओ। बारह आने की टिकिट थी और बारह आने की पुस्तक थी। तुम क्या बोलते हो, वह मुझे ख्याल आये बिना कैसे..? तो यह कहते हैं कि उदासीनोऽहम्। आहाहा! बेटा! तू उदासीनो, शुद्धोसि, बुद्धोसि, उदासीनोऽसी, निर्विकल्पोसि है। आहाहा! ऐसे भगवान! नाटक में भी ऐसा कहते थे। यह तो भगवान की वाणी है। आहाहा! सन्तों की वाणी, वह भगवान की ही वाणी है। केवलज्ञान के पथानुगामी, केवलज्ञान को जो कुछ... आहाहा!

मुमुक्षु : प्रथमानुयोग के कथन...

पूज्य गुरुदेवश्री : साक्षात् भगवान की दिव्यध्वनि यह है, प्रभु!

कहते हैं, **हास्य,..** नहीं है। आहाहा! यह तो पण्डित ने भी देखा है। हास्य पाप है। तुमने देखा है? पाप है। मुनि के दस धर्म की पुस्तक बनायी है न? उसमें हास्य को पाप कहा है।

रति,... प्रसन्न होना। किसमें प्रसन्न हो? प्रभु! अतीन्द्रिय आनन्द के नाथ के समक्ष प्रसन्नता की चीज़ कहाँ है? आहाहा! उसमें रति नहीं। यह प्रसन्नता, हों! अन्दर आनन्द की प्रसन्नता तो भरी है। परन्तु बाहर की कोई चीज़.. ओहोहो! एक दिन में कदाचित् कोई अरब रुपये की आमदनी हुई हो तो भी रति (प्रसन्नता) आत्मा में नहीं। रति (प्रसन्नता) आत्मा में नहीं, प्रभु! आहाहा! प्रसन्न होने की चीज़ नहीं है।

इसी प्रकार **अरति,...** खेदखिन्नता। कोई प्रतिकूल चीज़ देखकर अथवा अपने को यह चीज़ प्रतिकूल है, ऐसा मानकर अरति होती है। आहाहा! वह अरति प्रभु में नहीं है। पाप है। आहाहा! **शोक,...** लड़का-लड़की गुजर जाये या लक्ष्मी का नाश हो जाये, मकान जल जाये, लाखों-करोड़ों रुपये का मकान हो और जल जाये। अन्दर से एकदम बिजली का भभकारा हो, जलकर राख हो जाये। आहाहा!

मुम्बई में ऐसा बना था। बड़ा मकान बनाया था, करोड़ों रुपये का मकान, उसमें स्तम्भ होता है न? उसे क्या कहते हैं? सीमेण्ट। सीमेण्ट कचासवाली थी। सब लोग काम करके सो रहे थे। बारह बजे तक काम किया और फिर भोजन करके सो रहे थे। ऊपर से गिरा, चार सौ लोग.. आहाहा! भुक्का उड़ गया, मर गये। आहाहा! एक अपने भी अमरेली के क्या नाम? भूल गये। अचरजभाई, वे भी मकान बनाते थे, ऊपरी कर्ताहर्ता थे, और बनानेवाले कारीगर थे, दोनों बैठे थे। उसमें ऊपर से मकान गिरा। हल्की सीमेण्ट प्रयोग की थी, दोनों मर गये। आहाहा! किसका शोक करना? जिस समय में जो चीज़ जिस प्रकार से बननी हो, उस प्रकार बनती है और बनेगी ही। परमात्मा में वह चीज़ नहीं है। किसकी अरति करना? शोक करना?

भय,... नहीं है। भगवान तो निर्भय है। समकित का भी नि:शंक जो गुण है न, पहला? नि:शंक अर्थात् निर्भयता है। नि:शंक कहो या निर्भय कहो। भगवान आत्मा की जो श्रद्धा हुई, वह तो निर्भय है। आहाहा! पूरी दुनिया का भय उसे नहीं है। नि:शंक। समकित के पहले बोल में। उसका मूल अर्थ तो निर्भय है। नीडर, निर्भय। आनन्द का नाथ जहाँ अनुभव में आया, तो किसी चीज़ से उसे भय नहीं लगता। सिंह आवे तो भी भय नहीं लगता। आहाहा!

श्रीमद् तो अपूर्व अवसर में कहते हैं

एकाकी विचरूँगा कब श्मशान में
एकाकी विचरूँगा कब श्मशान में
अरु पर्वत में बाघ सिंह संयोग जब

आहाहा! बाघ के, सिंह के संयोग में भी मन में क्लेश नहीं। आहाहा! वह तो मित्र है। मुझे शरीर रखना नहीं है और मेरा शरीर है नहीं, तो वह ले जाता है और खाता है, इसलिए वह मेरा मित्र है। अपूर्व अवसर में ऐसा लिखा है। 'परम मित्र का मानो पाया योग जब' आहाहा!

एकाकी विचरूँगा कब श्मशान में
अरु पर्वत में बाघ सिंह संयोग जब। आहाहा!
अडोल आसन अरु मन में नहीं क्षोभ हो।

आसन अडोल, मन में क्षोभ नहीं, मन में भी कम्प नहीं। आहाहा! मानो परम मित्र का योग हुआ। प्रभु! सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रदशा... आहाहा! वह परमेश्वर पद प्राप्त करना, वह पद कोई अलौकिक है।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि बिल्कुल भय नहीं। **जुगुप्सा,...** नहीं। किसी चीज़ की ग्लानि नहीं। ज्ञेय है। ज्ञेय में भाग कैसा? यह ग्लानि और यह ग्लानिरहित, ऐसे ज्ञेयरूप से सर्व पूरा जगत में भाग करना, (कि) ग्लानिवाली चीज़ (है), वह मिथ्यात्व है। आहाहा! यह **जुगुप्सा...** भाव आत्मा में नहीं है। आहाहा!

क्रोध,... कषायभाव, क्रोधभाव, यह द्वेष का अंश है। यह नहीं। **मान...** नहीं। किसका मान? प्रभु परमात्मा जहाँ नजर में पड़ा, जहाँ अनुभव में आया, वहाँ किसका मान? आहाहा! **माया,...** माया आत्मा में है ही नहीं। कपट का अंश आत्मा में नहीं है और **लोभ,...** भी नहीं है। इच्छामात्र का लोभ... आहाहा! मोक्ष की इच्छा, उस इच्छा का भी अभाव है। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ अन्दर विराजता है। अतीन्द्रिय आनन्द की गाँठ (पिण्ड) है। आहाहा! वह गाँठ खोल। मिथ्यात्व छूटने पर गाँठ खुल जाती है। अतीन्द्रिय आनन्द का झरना झरता है। ऐसी चीज़ में यह लोभ नहीं है। पर सन्मुख की इच्छा मात्र का लोभ नहीं है। आहाहा!

चौदह अभ्यन्तर परिग्रहों का... चौदह कहे न? **चौदह अभ्यन्तर परिग्रहों का अभाव होने से आत्मा, निराग है।** चौदह प्रकार के परिग्रह का भगवान आत्मा में अभाव है। चौदह प्रकार के अभ्यन्तर परिग्रह और दस प्रकार का बाह्य परिग्रह, ऐसे चौबीस प्रकार के परिग्रह कहे हैं। यहाँ तो कहते हैं, दस प्रकार के परिग्रह तो बाह्य हैं। उनका तो ग्रहण-त्याग नहीं है। आहाहा! ये बाह्य जो परिग्रह हैं, उनका त्याग-ग्रहण नहीं परन्तु अनादि से उन्हें ग्रहण मानता है, वह अभ्यन्तर परिग्रह है। भगवान उससे रहित निराग है। आहाहा!

निश्चय से समस्त पापमलकलंकरूपी कीचड़ को धो डालने में... आहाहा! मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव वीतरागी सन्त थे। वीतरागभाव का आलेख करते हैं। वीतरागभाव का आलेख करते हैं। आहाहा! **निश्चय से समस्त पापमलकलंकरूपी कीचड़ को धो डालने में समर्थ,...** ऐसा प्रभु समर्थ। **सहज, परमवीतराग-सुखसमुद्र में मग्न...** आहाहा! स्वाभाविक परमवीतराग ऐसा सुख का समुद्र है। आहाहा! अंगुल के असंख्य भाग में

निगोद के अनन्त जीव (रहते हैं)। एक-एक जीव में अनन्त (गुण) समुद्र भरा है। क्षेत्र की विशालता की जरूरत नहीं है। उसकी शक्ति और सहज सामर्थ्य की जरूरत है। आहाहा! निगोद के जीव में भी यह **सहज, परमवीतराग-सुखसमुद्र में मग्न (डूबी हुई, लीन) प्रगट सहजावस्थास्वरूप...** आहाहा! यह तो फिर अवस्था कही। सहज अवस्था। आनन्द समुद्र भगवान आत्मा की पर्याय में झरना आना, शुद्ध चैतन्यघन जो है, उसमें एकाग्र होकर पर्याय में सहज अवस्था में आनन्द आना, उस सहज अवस्थास्वरूप, जो सहज ज्ञानशरीर... आहाहा! वह सहज ज्ञानशरीर आत्मा है। आत्मा को तो ज्ञानशरीर है। आहाहा! **उसके द्वारा पवित्र होने के कारण...** सहज ज्ञानशरीर **उसके द्वारा पवित्र होने के कारण आत्मा, निर्दोष है।** आहाहा! प्रभु तो निर्दोष ही है। सदोषादि तो पर्याय में है। वस्तु में अंश भी दोष नहीं है। आहाहा! यहाँ दृष्टि करानी है।

नियम-नियम। वस्तु का नियम-सार। वस्तु का नियम। यह आगे गाथा में आयेगा। वस्तु का नियम है, उस वस्तु के नियम का यह सार है। आहाहा! वीतरागभाव है। रूखा राग—रागवाले को रूखा लगे, परन्तु बात तो रसकसवाली है। शान्ति और आनन्द के रसकसवाली बात है। आहाहा!

सहज अवस्था से। **पवित्र होने के कारण...** पवित्र, यह क्या कहा? **सहजज्ञान-शरीर, उसके द्वारा...** ज्ञानरूपी शरीर। आहाहा! भगवान को तो ज्ञानशरीर है। यह औदारिकशरीर आदि नहीं। यह तो पहले आ गया। **उसके द्वारा पवित्र होने के कारण आत्मा, निर्दोष है।** आहाहा! यह नियमसार। वस्तु का नियम, वस्तु का कायदा-नियम, उसका यह सार है। आहाहा!

सहज निश्चयनय से... आहाहा! **सहज ज्ञान...** स्वाभाविक त्रिकाली ज्ञान, **सहजदर्शन,..** त्रिकाल, **सहजचारित्र,..** त्रिकाल। आहाहा! चारित्र, पर्याय में है, वह नहीं। पर्याय में है, वह चारित्रगुण की पर्याय है। सहज-चारित्रगुण एक त्रिकाल आत्मा में है। **सहजचारित्र, सहज-परमवीतराग सुख...** सहज परमवीतराग सुख आदि। आहाहा! **आदि अनेक परमधर्मों के आधारभूत...** ऐसे अनन्त गुण के आधारभूत। यह भी आधार-आधेय की व्यवहार से बात की है। गुण आधेय और द्रव्य आधार, यह व्यवहार से बात की है। आधार-आधेय वस्तु एक ही है। लोगों को समझाने के लिये (कहा है) कि अनन्त

गुण हैं, उनका भगवान आधार है। आधेय में गुण हैं। आहाहा! वह चीज़ कोई पर्याय के और राग के आधार से है, ऐसा नहीं है। गुण का आधार है। आहाहा! समझ में आया?

अनेक परमधर्मों के आधारभूत निज परमतत्त्व को जानने में समर्थ... निज परमतत्त्व, **निज परमतत्त्व को जानने में समर्थ होने से आत्मा निर्मूढ़ है;...** आहाहा! उसमें मूढ़ता नहीं है। निर्मूढ़ के दो अर्थ करेंगे। एक त्रिकाल निर्मूढ़ है, यह पहली बात की। **अनेक परमधर्मों के आधारभूत निज परमतत्त्व को जानने में समर्थ होने से आत्मा निर्मूढ़ (मूढ़तारहित) है;...** यह त्रिकाल की बात की। अब वर्तमान मूढ़तारहित। वर्तमान मूढ़तारहित केवलज्ञान लेते हैं। आहाहा! **अथवा, सादि-अनन्त...** पहले मूढ़ता कही, वह अनादि-अनन्त निर्मूढ़ प्रभु है और उसके आश्रय से सादि-अनन्त निर्मूढ़ता प्रगट होती है। निर्मूढ़ जो अनादि-अनन्त प्रभु है, उसके आश्रय से सादि-अनन्त निर्मूढ़ता प्रगट होती है। **सादि-अनन्त अमूर्त...** अमूर्त—रंग, गन्ध, रस, स्पर्श नहीं। **अतीन्द्रिय...** इन्द्रियरहित। **स्वभाववाले...** ऐसे स्वभावभाववाले **शुद्ध सद्भूत व्यवहारनय...** यह केवलज्ञान.. आहाहा! यह व्यवहारनय है। **शुद्ध सद्भूत व्यवहारनय...** है। पर्याय है न? आहाहा! त्रिकाल निर्मूढ़ है, वह निश्चय है और इसके अवलम्बन से केवलज्ञान मुक्तदशा (प्रगट होती है), वह सादि-अनन्त (व्यवहारनय है)। **व्यवहारनय से तीन काल और तीन लोक के स्थावर-जंगमस्वरूप समस्त द्रव्य-गुण-पर्यायों को...** आहाहा! समस्त जीव आदि पदार्थ छह द्रव्य हैं। वह द्रव्य-वस्तु। गुण का एकरूप, वह द्रव्य। गुण का रूप, वह शक्ति-गुण और वर्तमान उसकी परिणति, वह पर्याय है। तीन काल के जो द्रव्य-गुण-पर्याय हैं, उन्हें **एक समय में जानने में समर्थ...** आहाहा! निर्मूढ़ता के दो अर्थ किये। त्रिकाल निर्मूढ़ता है, तो पर्याय में निर्मूढ़ता आती है। आहाहा! ऐसी बात है। सूक्ष्म बात लगे। वस्तु यह है। अरे! देह छूट जायेगी। कोई सहायक नहीं, कोई मददगार नहीं। अकेला तत्त्व अनादि से (रहा है) गाथा है न? अकेला जन्मा, अकेला मरा, अकेला रहा, यह अकेला मुक्ति को प्राप्त हुआ। आहाहा! श्लोक है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, ऐसी पर्याय जो तीन काल (जाने)। ओहोहो! जो द्रव्य की पर्याय अभी प्रगट नहीं हुई, भविष्य की अनन्त पर्याय, अनन्त द्रव्यों की... आहाहा! आकाश का भी जहाँ अन्त नहीं। क्षेत्र से आकाश का कहीं अन्त नहीं। चारों ओर चौदह ब्रह्माण्ड एक राई तुल्य है। चारों ओर आकाश अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त..

कहीं किसी दिशा में अन्त नहीं। ऐसे आकाश की पर्याय को भी जानने में समर्थ। आहाहा! पर्याय की बात है। ऐसा आकाश, जिसका अन्त नहीं। जान लिया, इसलिए अन्त हो गया, ऐसा नहीं है। अन्त नहीं है... अन्त नहीं है... ऐसा जाना। चारों ओर चौदह ब्रह्माण्ड तो एक राईतुल्य है। बाकी अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. दशों दिशा चारों ओर। उसे भी एक समय में जानने में समर्थ है। आहाहा! ऐसा केवलज्ञान है। उस केवलज्ञान की बात करते हैं। पर्याय की। आहाहा!

एक समय में जानने में समर्थ। सकल-विमल। पूर्ण निर्मल। तीन काल के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाना, तो ऐसा कोई मेल हुआ, भेद हुआ, मेल हुआ? नहीं। वह तो अपना निजस्वरूप ही है। पर को जानना, वह तो अपने निजस्वरूप में स्वस्वरूप है; इसलिए उसे विमल कहते हैं। सकल-विमल—जरा भी मलिनता नहीं। आहाहा! नहीं तो है तो शुद्ध सद्भूतव्यवहार। केवलज्ञान, वह शुद्ध सद्भूतव्यवहार है। पर्याय है न? शुद्ध है, सद्भूत है, भेद है। शुद्ध सद्भूतव्यवहार है। आहाहा! ऐसी पर्याय में तीन काल-तीन लोक ज्ञात होता है। ऐसा प्रभु! उसकी पर्याय का इतना सामर्थ्य है, तो उसके द्रव्य के सामर्थ्य की निर्मूढ़ता की बात क्या करना? ऐसा कहते हैं। आहाहा! आहाहा!

द्रव्य की निर्मूढ़ता तो अपार.. अपार.. अपार पड़ी है। जैसे आकाश का क्षेत्र से पार नहीं है, वैसे अन्दर गुण की शक्ति का भाव पार नहीं है। आकाश का क्षेत्र से पार नहीं क्षेत्र से, वैसे इस गुण के भाव के सामर्थ्य का भाव से पार नहीं है। आहाहा! यहाँ तो सहज कुछ अच्छी वस्तु मिली, शरीर ठीक मिले, या स्त्री कुछ मिले, पैसा मिले, वहाँ अन्दर अभिमान आ जाता है। आहाहा! प्रभु! तेरी शक्ति तो तीन काल-तीन लोक को जानने की पर्याय है न! द्रव्य की तो क्या बात करना? आहाहा! कोई चीज़ मेरी है, ऐसा तो वस्तु के स्वरूप में नहीं है। उसे जानना, ऐसी शक्ति है—ऐसा कहा जाता है। वास्तव में तो वह ज्ञान अपनी पर्याय है, आहाहा! पर को भी जानने की शक्ति अपने से अपने में है। आहाहा!

सकल-विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञानरूप से अवस्थित होने से... भगवान केवलज्ञानरूप से अवस्थित होने से। आहाहा! आज मक्खन है, बापू! तत्त्व का मर्म-रहस्य है। पूर्णानन्द का नाथ निर्मूढ़ है परन्तु पर्याय में केवलज्ञान प्रगट हुआ, वह निर्मूढ़ है। आहाहा! वह केवलज्ञानमय **केवलज्ञानरूप से अवस्थित होने से आत्मा, निर्मूढ़ है।** यह पर्याय से निर्मूढ़ कहा। कुछ जाने बिना नहीं रहता और पूर्ण जाना, इसलिए विकल्प उत्पन्न होता है,

ऐसा नहीं है। ऐसी निर्मूढ़ केवलज्ञान पर्याय है। एक समय की पर्याय तीन काल, तीन लोक को; पर को स्पर्श किये बिना, पर की ओर का उपयोग किये बिना, अपने स्वरूप में अपनी शक्ति के सामर्थ्य से केवलज्ञान में सब निर्मूढ़रूप से जानता है। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैंने तो मेरी भावना के लिये नियमसार बनाया है। आहाहा! मेरी भावना, मेरी भावना के लिये मैंने तो बनाया है। आहाहा! यह लोग सुनें... आहाहा! निहाल करने का रास्ता है, प्रभु! निहाल तो वह निहाल है। आहाहा! निर्मूढ़ तत्त्वदृष्टि में आवे, वह निहाल और निर्मूढ़ता पर्याय में प्रगट हो, वह निहाल.. बाकी तो सब निहाल-विहाल कुछ है नहीं। आहाहा! रजनीभाई! यह सब पैसा-बैसा से निहाल नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : हमारे लिये तो पैसे कीमती हैं, आपके पास तो पैसा...

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ हमें और तुम्हें है ही कहाँ? यहाँ तो आत्मा.. आत्मा.. आत्मा.. आत्मा.. प्रभु ही सब हैं। आहाहा! सब भगवान आत्मा हैं। द्रव्यरूप से तो सब साधर्मी हैं। आहाहा! किसी के प्रति प्रेम या द्वेष है नहीं। आहाहा! द्रव्यरूप से साधर्मी लिया है। आहाहा! यहाँ और अन्यत्र कोई ऐसा भेद नहीं है। आहाहा! तीन काल में द्रव्य निर्मलानन्द सब द्रव्य, उन्हें एक समय में जानना, तथापि अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त को जाने, तथापि एक पर्याय में दो भाव हो या मूढ़ता आ जाये या विकल्प आ जाये, ऐसा है नहीं। आहाहा!

आत्मा, निर्मूढ़ है। समस्त पापरूपी शूरवीर शत्रुओं की सेना जिसमें प्रवेश नहीं कर सकती... आहाहा! प्रभु महावज्र का किला है। ज्ञान-आनन्द आदि वज्र का किला है। उस वज्र के किले में किसी का प्रवेश नहीं होता। आहाहा! वज्र का गढ़ हो, वज्र का गढ़, उसमें कौन प्रवेश करे? आहाहा! यहाँ कहते हैं कि **समस्त पापरूपी शूरवीर शत्रु...** अर्थात् उग्र में उग्र जो पाप। शूरवीर, उसकी सेना, वह एक नहीं परन्तु उसकी सेना। आहाहा! **पापरूपी शूरवीर शत्रुओं की सेना...** वह पाप कौन? **समस्त पापरूपी शूरवीर...** महा वीर की जिसमें उन्धाई-उल्टापन, ऐसे शत्रुओं की सेना का समूह। **जिसमें प्रवेश नहीं कर सकती...** जिसे छूता नहीं। आहाहा! **ऐसे निज शुद्ध अन्तःतत्त्वरूप महादुर्ग में (किले में)...** आहाहा! अफ्रीका में है न? वहाँ हबसी का बहुत भय हबसी का बहुत भय। रास्ते

में ही लूट ले। हम जहाँ पन्द्रह लाख के मकान में रुके थे, वहाँ तीन पिटारा (थे)। पहला एक क्या कहलाता है वह ? वण्डी। पहले एक बड़ी वण्डी, पश्चात् तार की एक वण्डी, पश्चात अन्दर लोहे के तार की तीसरी वण्डी। तीन में से कोई आ नहीं सकता। आहाहा!

मुमुक्षु : यह (आत्मा) तो कुदरती किला है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अन्दर में कोई आ नहीं सकता, बापू! आहाहा!

ऐसे **शुद्ध अन्तःतत्त्वरूप महादुर्ग में (किले में) निवास करने से आत्मा, निर्भय है।** उसमें रहनेवाला आत्मा निर्भय है। **ऐसा यह आत्मा वास्तव में उपादेय है।** ऐसा आत्मा उपादेय है। फिर मोक्षमार्ग निश्चय को उपादेय कहना, वह अपेक्षित है। वास्तव में यह आत्मा उपादेय है, इसे उपादेय में सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होता है, तो इसे जन्म-मरण का अन्त आता है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)